अष्टम अध्याय

‘रामचरितमानस’ और ‘सप्तकाण्ड रामायण’ दोनों की प्रासंगिकता की तुलना

8.1 प्रस्तावना

प्रासंगिक रचनाएँ सदा ही कालजयी होती हैं जो अपने साथ-साथ अपने रचयिता को भी अमर बना जाती हैं। किसी भी रचना की प्रासंगिकता उसकी समाजोपयोगी गुणराशी की वर्तमान संदर्भ में आवश्यकता से आँकी जाती है। वह रचना वर्तमान युग या आने वाले समय में कितनी उपयोगी होगी अथवा उस रचना की विषय-वस्तु, घटनाक्रम, गति, नियम व आदर्श तथा सर्वोत्तम वस्तु भक्ति-भावना कितनी ग्रहणीय तथा अनुसरणीय होगी, यही उस रचना की सार्थकता है। ये गुण जितना ही वर्तमान को लाभान्वित करेंगे उतने ही काल तक भविष्य में स्मरणीय, पठनीय, अनुसरणीय तथा पूजनीय भी रहेंगे। 'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' इस दृष्टि से सर्वथा कालजयी रचना है। इसका प्रमुख कारण इन दोनों रचनाओं में निहित रामभक्ति की रसपूर्ण धारा का प्रवाह तथा इन रचनाओं में उल्लेखित पात्रों के व्यक्तित्व और कर्म का आदर्श रूप तथा इनके नीति-नियम इत्यादि हैं जो जीवन के लिए अत्यंत ही उपयोगी हैं।

8.2 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों की प्रासंगिकता की तुलना

'रामचरितमानस' एवं 'सप्तकाण्ड रामायण' की प्रासंगिकता पर विचार करने के लिए इन दोनों महाकाव्यों में वर्णित उन प्रासंगिक बातों, उन रीति-नीतियों तथा आदर्शों का विश्लेषण करना आवश्यक होगा। इन दोनों रचनाओं में निहित अनेकों विशेषताएँ हैं जो सर्वथा प्रासंगिक हैं। जैसे सत्संग की महिमा, गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव, स्त्री-धर्म की शिक्षा या आदर्श, पुत्र-धर्म, पितृ-धर्म, भ्रातृ-धर्म आदि आदर्शों पर यहाँ विचार करना

आवश्यक है । डॉ. संजय कुमार शर्मा ने भक्ति काव्य की प्रासंगिकता की व्याख्या करते हुए 'रामचरितमानस' में निहित मूल्यों आदि का बड़ा ही सुंदर विश्लेषण किया है । डॉ. शर्मा के शब्दों में-

> 'रामचरितमानस' मानव जीवनोपयोगी मूल्य मणियों की खान है जिनको प्राप्त कर एवं अपना कर विश्व मानव अपने को अधिक 'सुखी' तथा 'संतुष्ट' बना सकता है और विश्व सभ्यता अधिक आदर्श 'उन्नत' तथा 'स्थायी' हो सकती है । मानस में मानव की आचार-संहिता का सम्यक दर्शन होता है । तुलसी ने लोक-आचरण में नर-नारायण दोनों का समन्वय किया है । तुलसी के 'राम' मानवीय संवेदना के प्रतीक हैं, लोकप्रिय लोकनायक हैं, प्रजावत्सल, भक्त वत्सल हैं, सखाओं, बंधुओं के बंधु सहचर हैं ।...तुलसी ने मानव-जीवन का जो आदर्श जगत के सम्मुख रखा है, वह कोरी 'कल्पना' या चिंतन-मनन भर की वस्तु नहीं, जीवन में 'उतारने' की चीज है, व्यवहार में 'ढालने' की चीज है, आचार में अपनाने की चीज है,(शर्मा 2008:94)

'रामायणी साहित्यर अध्ययन' शीर्षक समीक्षात्मक आलोचना में उत्तरकाण्ड की व्याख्या करते हुए लेखक शोभन चन्द्र शइकिया लिखते हैं-

> भारतवर्षत एने कोनो कल्पना नाई, एने आदर्श नाई, एने कोनो अभिव्यक्ति नाई, यि रामायनत सुललित भावे व्यक्त होवा नाई । पत्नीप्राण पति हिसापे, पितृ-भक्त पूत्र हिसापे, प्रजारंजक शासक हिसापे भारतवर्षत कोनो आदर्शई रामचंद्रक अतिक्रम करिब परा नाई । भ्रातार आदर्श रुपे लक्ष्मण आरू भरतर चरित्र, सेवकर आदर्श रुपे हनुमानर चरित्र, साधवी

आरू पतिगतप्राणा पत्नीरुपे सीतार आदर्श आजीउ भारतवासीर बाबे ध्रुवतरा स्वरूप।(शइकीया बरा और बरा 2005:76)

इसी कारण रामकाव्य की प्रासंगिकता की विवेचना करते हुए डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय लिखते हैं-

संभव है कि संसार के किसी कोने के कुछ लोग वाल्मीकि और तुलसी को महत्व न दें तथा यह भी संभव है कि वे राम को परमब्रह्म मानने को तैयार न हों परंतु रामराज्य की अवधारणाओं के कारण उसकी प्रासंगिकता से किसी को भी असहमति हो, यह असंभव है,(पांडेय 2020:159)

अतः दोनों ही महाकाव्यों में निहित मूल्यों, आदर्शों तथा नीतियों आदि का आगे दो शीर्षकों साम्य और वैषम्य के आधार पर संक्षिप्त रूप में विवेचन यहाँ किया जा रहा है-

8.2 साम्य

'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही रचनाओं में माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने की शिक्षा मिलती है । माता-पिता की सेवा, उनको प्रातः उठकर प्रणाम करके अपने कार्यों की शुरुवात करना, उनकी आज्ञा का पालन करना इत्यादि यह सभी प्रसंग निश्चय ही प्रासंगिक हैं, अनुसारणीय भी है । बालकांड में ही रघुनाथ सुबह उठते ही पहले माता-पिता को तथा गुरु को प्रणाम करते है । तुलसीदास ने इस प्रासंगिक घटना को कुछ इस प्रकार से वर्णित किया है-

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥(तुलसीदास 2015:204)

दोनों ही महाकाव्यों में गुरु तथा ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा और सेवा का परम आदर्श भाव प्रस्तुत हुआ है। राजा दशरथ यहाँ स्वयं गुरु-ब्राह्मण की सेवा-पूजा अपने हाथों से चरण धोकर तथा पूजन कर के करते हैं। 'रामचरितमानस' में भी राम स्वयं अपने गुरु की आज्ञा पाने के पश्चात ही धनुष तोड़ते हैं,-

'गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु मागा।।(तुलसीदास 2015:247)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी राजा दशरथ स्वयं विश्वामित्र का अपने महल में विधि पूर्वक सेवा पूजन करते हुए आदर सहित उन्हें स्वर्ण आसन पर विराजित करते हैं,-

आपूनि चरण धूवाई दशरथे

पादोदक लैला माथे।

परम सादरे सअर्घे ऋषिक

पूजिला पृथिवीनाथे।।(दत्तबरुवा 2016:56)

अतः यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही महाकाव्यों में भारतीय संस्कृति का सुंदर स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय के शब्दों में-

> रामचरितमानस भारतीय सांस्कृतिक चेतना का विलक्षण वैश्विक महाकाव्य है जिसमें मानवता के मंगल सूत्रों का सन्निधान है।(पांडेय 2020:158)

'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों में ही सत्संग या साधु-संगति की बड़ी महिमा गायी गई है। सत्संग से ही हमें नाम धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है तथा नाम में रुचि भी सत्संग का ही परिणाम है।

'रामचरितमानस' में साधू या संत के गुणों की व्याख्या करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि संत का जीवन कपास के समान होता है जो अपने जीवन को लोक कल्याण में समर्पित कर देता है,-

साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

जो सहि दुख परछिद्र दूरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।(तुलसीदास 2015:20)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी सत्संग का गुणगान तथा इसकी कृपा से भगवद्प्राप्ति के महान मंत्र की गुणावली का बखान हुआ है। 'सप्तकाण्ड रामायण' में अयोध्याकाण्ड के अंत में सत्संगति की गुणराशि की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि दुस्संग त्यागकर सत्संग करना चाहिए और रामकथा का आश्रय लेना चाहिए। यह जीवन अस्थिर है। इसीलिए राम नाम का शरण ही एकमात्र उपाय है,-

हेन निष्ठ जानि दुसंग तेजिया

लैयो संग महंतर।(दत्तबरुवा 2016:178)

स्त्री माता-पत्नी आदि विभिन्न रूपों में समाज को अपने प्रेम और दया का दान देकर सबका उद्धार कर उसी समाज में प्रेम, सौंदर्य तथा सेवा भावना का महानतम आदर्श प्रस्तुत करती है। अगर यही स्त्री आदर्शवान हो, अथार्त उसकी सेवा भावना और उसका प्रेम पूर्णरुपेण अपने स्वामी के प्रति समर्पित तथा आदर्श युक्त हो तो उस समाज में, जिसमें ऐसी महान नारियाँ होती हैं, उस समाज का युगों तक कभी भी पतन नहीं होता। 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों में इस भावना का आदर्श रूप प्रस्तुत हुआ है।

'रामचरितमानस' में सीता के विवाह के पश्चात सभी रानियाँ उन्हें कुछ सीख देते हुए कहती हैं कि सास-ससुर की सेवा करनी चाहिए। स्त्री-धर्म की शिक्षा का यहाँ एक सुंदर उदाहरण द्रष्टव्य है-

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ।।

अति सनेह बस सखीं सयानी। नारी धरम सिखवहिं मृदु बानी ।।(तुलसीदास 2015:318)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी स्त्री धर्म का आदर्श रूप ही प्रस्तुत हुआ है। राजा जनक ने स्वयं अपनी प्राणप्रिय पुत्री को स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए उनके कर्तव्यों का बोध भी कराया है। राजा कहते हैं कि स्त्री का पति ही उनका आभूषण होता है। अपने पति की बात को कभी भी लांघना नहीं चाहिए। सास-ससुर की सदा ही सेवा करनी चाहिए-

सती स्त्रीसकलर स्वामीसे भूषण।

कदाचितो नलंघिबा रामर बचन ।।

एकचित्ते सेवा करिबाहा सर्ब्बक्षणे।

करिबा शुश्रुषा शाशु श्वशुर चरणे ।।(दत्तबरुवा 2016:33)

'रामायणी साहित्यर अध्ययन' शीर्षक समीक्षात्मक आलोचना में डॉ. प्रणति शर्मा गोस्वामी ने माधव कंदली रामायण की व्याख्या करते हुए लिखा है-

तेऊँर रामायण असमिया जातिर आसार-व्यवहार, अलंकार आरू सामाजिक जीवनर कथारे भरा। ...सेईबाबे कंदली रामायण असमिया जातिर प्राणरो प्राणर ।(शइकीया बरा और बरा 2005:124)

सनातन धर्म में वैदिक संस्कारों का पालन होता है। ये संस्कार ही भारत देश के प्राण हैं। इन संस्कारों की प्रासंगिकता आज भी जिस प्रकार युगों से बनी हुई हैं, ये सभी बातें ही इस महान काव्य में इस बात को प्रमाणित करती हैं कि ये आने वाले युगों में भी इसी प्रकार से प्रासंगिक तथा अनुसारणीय बनी रहेंगी। 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों काव्यों में भी इन संस्कारों का पालन अवश्य हुआ है। वैदिक धर्म में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। दोनों ही काव्यों में सभी संसकारों का निर्वाह देखने को मिलता है। भरत पिता दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया को पूरे विधि-विधान से करते हैं। तुलसीदास ने इस प्रसंग को कुछ इन शब्दों में वर्णित किया है,-

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ।।

सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना ।।(तुलसीदास 2015:484)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी इन संस्कारों का उल्लेख हुआ है ये संस्कार निश्चय ही प्रासंगिक हैं तथा अनुसरणीय भी हैं। आदिकाण्ड में ही हमें जनक सुता सीता का संस्कार वैदिक रीति से होता देखने को मिलता है,-

परम दरिद्रे जेन पाइला नवनिधि।

कराइलन्त संस्कार जेन बेदबिधि ।।(दत्तबरुवा 2016:52)

आज के इस वर्तमान युग में अगर देखा जाए तो आज समाज को सभी सोलह संस्कारों के नाम तक भी शायद ही ज्ञात हो। आज अगर किसी के घर पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन आदि संस्कार ही क्यों न करने हों, आज भी हमारे समाज में इन संस्कारों आदि का किसी के घर अगर पालन करने की आवश्यकता पड़ जाए तो लोग अपने या आस-पास के बड़े बुजुर्गों का मुख देखते लगते हैं। सोचने की बात है कि अगर ये वृद्ध पीढ़ी आज से कुछ 20-30 वर्षों बाद जब नहीं रहेंगी तब ये नियम कौन बतलाएगा। अर्थात ये सारे संस्कार आने वाले 50 वर्षों के उपरांत सभव है समाज से लुप्त ही हो जाएँ। पर इन सभी संस्कारों का अपना अलग ही वैज्ञानिक महत्व भी है। ये हमारे जीवन-चर्या का अविभाज्य अंग ही तो हैं। अतः इन सभी संस्कारों का समाज में यूं ही युगों तक प्रचलन रहे इसके लिए इन प्राचीन ग्रन्थों का श्रवण और इनपर मनन बेहद ही आवश्यक है। इन ग्रन्थों मे उल्लेखित आदर्शवादी पात्रों द्वारा पालन किया गया यह नियम ही आने वाली पीढ़ियों का आदर्श बन कर उनके हृदय में सदा जीवित रहेगा।

भक्ति काव्य की प्रासंगिकता का वर्णन करते हुए डॉ. संजय कुमार शर्मा लिखते हैं-

> भारतवर्ष पर जब-जब सांस्कृतिक संकट आया, मानवीय और नैतिक मूल्यों की ह्रास होने की स्थिति निर्माण हुई है तब-तब लोक मंगलकारी आध्यात्मिक चेतना ने ऐसे संकटों से देशवासियों को मुक्त किया है। सत्य, प्रेम, दया, करुणा, अहिंसा, सहानुभूति, सहयोग आदि मूल्य भक्ति में निहित हैं। इन्हीं मूल्यों के कारण मनुष्य को एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है और जीवन को सुख-शांति, संपन्नता और आनंद से परिपूरित किया जा सकता है। इन शाश्वत जीवन-मूल्यों की प्रतिस्थापना के कारण ही 'भक्तिकाव्य' की 'प्रासंगिकता' असंदिग्ध है। आधुनिक विज्ञान युग में पश्चिम का अंधानुकरण करके भौतिक समृद्धि के मोहजाल में फँसकर

हमने अपनी इस महान विरासत को भुला दिया है । परिणामतः हम निराशा, कुंठा, अकेलापन, घुटन, पीड़न, संत्रास, अवसाद आदि से निर्मित 'त्रासद परिवेश' में जी रहे हैं । इससे उबरने का एकमात्र उपाय है- 'अपने सांस्कृतिक मूल्यों का प्रत्यभिज्ञान' और उसके लिए आवश्यक है, भक्ति साहित्य का पुनः पारायण ।(शर्मा 2008:17)

'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों महाकाव्यों में मित्र धर्म की मर्यादा का भी आदर्श रूप प्रस्तुत हुआ है । यहाँ तो मित्र धर्म का पालन करने के लिए भगवान को अगर अन्याय करना पड़े या गुहराज अथवा सुग्रीव जैसे सुहृद को अपने आराध्य तथा मित्र राम के लिए प्राणों का उत्सर्ग भी करना पड़े तो भी वे मित्र धर्म में उत्सर्ग करने के लिए सदा ही तत्पर रहते हैं, अपने धर्म से पीछे नहीं हटते । 'रामचरितमानस' में राम अपने मित्र सुग्रीव को मित्र-धर्म की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि जो मित्र के दुख में दुखी नहीं होता ऐसे नर पुरुषों को देखने से भी पाप लगता है,-

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।।

निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ।।(तुलसीदास 2015:687)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी इसी प्रकार मित्र धर्म की शिक्षा दी गई है । यहाँ भी सुग्रीव अपने भाग्य में स्वयं प्रभु श्रीराम को मित्र रूप मित्र रूप में प्राप्त कर के अपने भाग्य की सराहना करते हैं । राम भी अपने मित्र के शत्रु का वध करने की प्रतिज्ञ करते हुए कहते है,-

नाहि दोष भकतद्रोहीक करो हत ।।(दत्तबरुवा 2016:245)

'रामचरितमानस' में भ्रातृ-धर्म के आदर्श रूप का भी पालन हुआ है। 'सप्तकाण्ड रामायण' भी इससे अछूता नहीं है। दोनों में ही भ्रातृ-धर्म का वह आदर्श रूप देखने को मिलता है जो आने वाले समाज को युगों-युगों तक प्रेरित करता रहेगा। भ्राता राम को वनवास जाते देख लक्ष्मण भी अधीर हो गए। उनके तो जैसे प्राण ही निकल जाने को उद्धत थे। राम के चरण पकड़कर बस इतना ही निवेदन उनके मुख से निकला कि वे भी वन को संग चलेंगे,-

समाचार जब लछिमन पाए। व्याकुल बिलख बदन उठी धाए।।

कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।(तुलसीदास 2015:401)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी लक्ष्मण अपने प्राण तक न्योछावर कर देने को तत्पर थे। राम का वियोग उन्हें मृत्यु से भी भयंकर प्रतीत होता है-

प्राण मोर दहे आति एतमान स्नेह।

हृदयत खाण्डा हानि तेजिबोहो देह।(दत्तबरुवा 2016:126)

'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों में ही जीवनोपयोगी नीतियाँ तथा आदर्श जीवन शैली की बहुत सारी बातों का उल्लेख हुआ है। सत्य, कुसंगति, न्याय-अन्याय, परोपकार, लोभ, ईर्ष्य, द्वेष, घृणा आदि सभी साधारण-असाधारण बातों पर भी कवियों ने प्रकाश डाला है। कुसंगति के दुष्परिणाम से अवगत कराते हुए कवि लिखते हैं-

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई।।(तुलसीदास 2015:363)

'सप्तकाण्ड रामायण' में भी शास्त्रों द्वारा निंदित कर्म की निंदा करते हुए कहते हैं कि किसी एक के किए गए अपराध के कारण सभी को दंड देना उचित नहीं है-

कनिष्टक संबुधिया रामदेव बुलिलंत

विशिष्टर नोहे हेन धर्म्म ।

एकलर अपराधे समस्तके संहरिबा

शास्त्रर निन्दित मंद कर्म ।।(दत्तबरुवा 2016:400)

'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही महाकाव्यों में जाति प्रथा, छुआ-छूत, भेद-भाव आदि अमानवीय मूल्यों का उद्घाटन नहीं हुआ है । अपितु दोनों ही महाकाव्यों में इन हीन मानसिकताओं पर प्रहार कर समाज में समानता और प्रेम लाने का प्रयास किया गया है । राम का निषादराज गुह, शबरी, जटायु, विभीषण तथा वानरों आदि से मित्रता तथा स्नेह का बंधन जोड़ना निश्चय ही जाति-भेद आदि मान्यताओं पर प्रहार कर समानता लाना है । डॉ. संजय कुमार शर्मा के शब्दों में-

> तुलसी का साहित्य वास्तव में हमारी संस्कृति का 'रसायन' है । समाज के दीन, पीड़ित, दलित,नीच, पतित, अधम,अछूत, अस्पृश्य लोगों के प्रति राम की 'जैसी उदार दृष्टि' है, वह हरिजन उद्धारकों, शोषित प्रेमियों पिछड़े वर्ग के रहनुमाओं, समाज सुधारकों के लिए प्रेरणाप्रद और पथप्रदर्शक हैं(शर्मा 2008:91)

इस प्रकार से हमने यहाँ देखा कि 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों में ही सामाजिक रीति-नीति, आचार-विचार, सेवा, परोपकार, धर्म-अधर्म, ज्ञान-विज्ञान की अनेकों अनुसरणीय तथा ग्रहणीय बातें निहित हैं। ये सभी बातें निश्चय ही प्रासंगीक हैं तथा आने वाले समाज को यह युगों-युगों तक प्रकाशित करती रहेंगी। डॉ. स्टेल्लाम्मा सेव्यर कहती हैं कि-

> गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस में सामाजिक जीवन की प्रासंगिकता सर्वकालीन एवं सार्वभौमिक हैं।(सेव्यर 2014:58)

8.4 वैषम्य

'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही काव्यों की प्रासंगिक बातों में कई सारी असमानता को भी देखा जा सकता है। ये असमानताँए कई प्रकार की हैं। जैसे कथावस्तु में असमानता, विषय–वस्तु में तथा घटना क्रमों में समानता न पाया जाना इत्यादि। परन्तु ये असमानताँए इसलिए उल्लेख करने योग्य हैं क्योंकि इन घटनाओं या विषय वस्तुओं में कुछ ऐसी मूल बातों, आदर्शों या शिक्षाओं का भी उल्लेख है जो कि प्रासंगिक भी हैं तथा अनुसरणीय भी हैं। जैसे पुष्पवाटिका प्रसंग के पश्चात गौरी पूजन की विधि दोनों में नहीं है केवल एक ही काव्य 'रामचरितमानस' में अंकित है। इस प्रकार राम भक्ति काव्य में गौरी आदि शक्ति की पूजा समन्वय की भावना भी प्रसारित करती है जो सर्वथा प्रासंगिक है। केवट प्रसंग में केवट की भक्ति पद्धति का जो वर्णन 'रामचरितमानस' में हुआ है वह 'सप्तकाण्ड रामायण' में नहीं मिलता। केवट की भक्ति समाज के लिए प्रेरणा दायक है और इसी हेतु वह प्रसंग अत्यंत ही प्रासंगिक भी है।

'रामचरितमानस' तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही महाकाव्यों में केवल इतना ही अंतर है कि 'रामचरितमानस' में तुलसीदास के राम ही नहीं बल्कि भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण, दशरथ, तीनों माताओं, सीता, मित्र सुग्रीव, विभिषन आदि सभी पात्र आदर्श की महान मूर्ति हैं, जिनके हृदय में राम के प्रति तनिक भी क्रोध या शंसय नहीं मिलता । परंतु 'सप्तकांड रामायण' में राम, सीता, लक्ष्मण तथा समस्त बानरों आदि पात्रों में आदर्श तो हैं परंतु यह आदर्श समान नहीं है । 'रामचरितमानस' की आदर्श भावना जहां दैव गुण युक्त परम निर्मल दिखाई देती है, वहीं 'सप्तकाण्ड रामायण' के आदर्श पात्र भी मानव गुणों तथा संवेदनाओं से युक्त हैं ।

8.5 निष्कर्ष

इस प्रकार से 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही महाकाव्यों की विषय-वस्तु और प्रासंगिक बातों की विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही रचनाएँ समाज के लिए प्रेरणा दायक हैं, दोनों ही रचनाएँ प्रासंगिक भी हैं तथा आने वाले युगों में लोगों को नीति-नियम, न्याय-अन्याय, सत्य, कर्तव्य, धर्म-अधर्म, हिंसा-अहिंसा आदि सैकड़ों जीवनोपयोगी नीतियों तथा सिद्धांतों से परिचित कराती रहेंगी । अतः यह कहा जा सकता है कि 'रामचरितमानस' और 'सप्तकाण्ड रामायण' दोनों ही महाकाव्य उत्कृष्ट तथा प्रासंगिक है । आने वाले समाज अथवा भविष्य के लिए यह सदा ही अनुसरणीय तथा कल्याणप्रद रहेंगी ।